आधुनिक समय में मूल्य-संक्रमण

डॉ. प्रमोद कुमार सहायक प्राध्यापक हिंदी विभाग, सरिया कॉलेज, सरिया, गिरिडीह (झारखण्ड)- 825320
ईमेल- pramodkumarprince413@gmail.com

सारांश :
'मूल्य' वर्तमान समय का बहुचर्चित शब्द है। यह शब्द दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान आदि से सम्बद्ध होने के कारण अनेकार्थी हो गया है। आधुनिक संस्तुति के संकट ने जिस नए भावबोध को जन्म दिया है उसका मूल्यांकन संवेदना, आधुनिक जीवन और बदलते मूल्य के संदर्भ में आवश्यक है। सामान्यतः मूल्य-प्रणाली की पृष्ठभूमि में मूल्य-परिवर्तन, मूल्य-विघटन, मूल्य-संकट, मूल्य-संक्रमण आदि शब्दों का काफी प्रयोग मिलता है। इन सभी में सूक्ष्म भेद तो है पर वे एक ही अर्थ के द्योतक हैं और वह है- मूल्यों में बदलाव। इनमें से अपेक्षाकृत मूल्य-संक्रमण शब्द कुछ भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह 'मूल्य-संक्रमण' मूल्य-परिवर्तन व नवीन मूल्यों के स्थिरीकरण के बीच की वह स्थिति होती है, जब मनुष्य के लिए पुराने मूल्य नये युग के संदर्भ में अनुचित लगने लगते हैं और नये मूल्य भी स्थापित नहीं हो पाते। परिवर्तन रूपी इस चक्र के कारण ही मूल्य-संक्रमण की स्थिति और नवीन मूल्यों के उद्भावना की स्थिति उत्पन्न होती है। इस शोध-आलेख में आधुनिकता के आलोक में मूल्य-संक्रमण के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला जा रहा है।

बीज शब्द : मूल्य, संक्रमण, परिवर्तन, संकट, विघटन, आधुनिक, जीवन, युग, धारणा, साहित्य, संस्कृति

मूल आलेख :

'मूल्य' चिंतन, विचार और धारणा की उपज है जो मनुष्य तथा उसके जीवन को अर्थवान बनाता है। परिस्थितियों के अनुसार मूल्यों में परिवर्तन स्वाभाविक है। प्राचीन युग में मनुष्य जिन परिस्थितियों में जी रहे थे उसी के अनुरूप मूल्यों की स्थापना की। परन्तु आज के इस संक्रमण युग में स्वतंत्र भारत पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित है जिससे मूल्य में टकराव और विघटन की स्थिति उत्पन्न हो रही है। समस्याओं व संकट के इस युग में मनुष्य का तीव्र भौतिक विकास तो हो रहा है पर मूल्यों का संरक्षण नहीं हो पा रहा है। उल्लेखित है कि मूल्य-संकट, मूल्य-विघटन, मूल्य-परिवर्तन, और मूल्य-संक्रमण सूक्ष्म भेद के साथ ही एक-दूसरे के पर्याय हैं। इन संकल्पनाओं में जो सूक्ष्म अर्थ-भेद है उसे स्पष्ट करना आवश्यक है।

मूल्य-संकट- 'मूल्य-संकट' मूल्यों पर मंडरा रहे खतरे की ओर संकेत करता है। आधुनिक युग में मूल्यों में ह्रास होने से मूल्यहीनता की स्थिति उत्पन्न हो रही है, जिससे कई विसंगतियां उभरकर सामने आ रही हैं। इस संबंध में कहा भी गया है कि "जब किसी युग और समाज में अन्यान्य कारणों से मूल्यों के प्रति अनास्था निर्माण हो जाती है, तो पुराने मूल्य तो टूटकर बिखर जाते हैं और आस्थाहीन समाज नए मूल्योंं को भी सहजता से नहीं अपना पाता। तब मूल्य में संकट की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।"[1] इस प्रकार मूल्य-संकट से उत्पन्न परिस्थितियाँ मनुष्य के मूल्य-बोध को प्रभावित करती हैं।

मूल्य-विघटन- 'विघटन' शब्द संगठन का विपर्यय है। मूल्य एक प्रकार की धारणा है और धारणा को बने रहना संगठन कहलाता है। जब किसी वस्तु, भाव या विचार के प्रति एक से अधिक धारणाएं बन जाती हैं तो मत भिन्नता के कारण विघटन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। परिणामस्वरूप समाज, धर्म, अर्थ, नीति, दर्शन, राजनीति आदि के संबंध में नयी-नयी मान्यताओं का उदय होने से प्रतिष्ठित सांस्कृतिक मूल्योंं का विघटन

 Copyright @ 2024 Author

होने लगता है। डॉ. नगेंद्र के अनुसार "विघटन का अर्थ है अस्वीकृति तथा निषेध- अर्थात् प्रकारांतर से एक और सत्य, शिव और सुंदर की धारणा और दूसरी ओर सद्-सत, शुभारंभ व सुंदर-असुंदर का निर्णय करने वाले तत्वों अथवा प्रतिमानों का निषेध।"[2] विघटन की इस प्रक्रिया में पूर्व-प्रतिष्ठित मूल्य समाज से पूरी तरह बहिष्कृत नहीं होते, बल्कि पुरातन मूल्य ही अपना रूप बदलकर एक नए रूप में प्रतिष्ठित होते हैं।

मूल्य-परिवर्तन- 'परिवर्तन' सृष्टि का नियम है जिसे बदलाव या किसी भी प्रकार के अंतर का सूचक कहा जा सकता है। इस संदर्भ में कह सकते हैं कि जब किसी वस्तु की पूर्व अवस्था में बदलाव और वर्तमान अवस्था में कोई अंतर आ जाए तो वह परिवर्तन कहलाता है। इन्हीं नियमों से मूल्यों में होने वाला परिवर्तन मूल्य-परिवर्तन है। डॉ. भैंरू लाल गर्ग ने कहा है कि "परिवर्तन से तात्पर्य यह नहीं कि वह विकासात्मक प्रक्रिया ही हो। किसी वस्तु में पहले की अपेक्षा विकास होता है अथवा गिरावट आती है, किंतु उसके स्वरूप में अंतर अवश्य आता है, अतः इन दोनों प्रक्रियाओं को हम परिवर्तन ही कहेंगे।"[3]

मूल्य-संक्रमण- भिन्न अर्थ में प्रयुक्त 'मूल्य-संक्रमण' मूल्य-परिवर्तन और नवीन मूल्य के स्थिरीकरण के बीच की वह स्थिति है जिसमें पुराने मूल्य नये युग के संदर्भ में अनुचित प्रतीत होते हैं और नवीन मूल्य भी स्थापित नहीं हो पाते। युग विशेष समाज में प्रचलित मूल्यों के प्रति जब लोगों में अनास्था के भाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो विद्यमान मूल्यों में टूटन और बिखराव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। हालांकि आस्थाहीन स्थिति में नवीन मूल्य सहज रूप से स्वीकारे नहीं जाते। यही स्थिति मूल्य-संक्रमण है। हालाँकि मूल्य-संक्रमण से समाज में मूल्य में बदलाव आने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। डॉ. रामगोपाल सिंह ने लिखा है- "माना कि पुरानी आस्थाएँ टूट रही हैं, लेकिन नई आस्थाओं के निर्माण की अनिवार्यता का महत्व भी अपनी जगह पर है। आस्था ही तो वह जड़ है जिससे मनुष्य अपने जीवन के वृक्ष में हर पतझड़ के बाद नई बाहर लाता है। पुरानी आस्थाएँ मिट रही हैं नई आस्थाएँ जन्म ले रही हैं।"[4] इन बदलती आस्थाओं-विश्वासों के समान गति से मूल्योंं में भी परिवर्तन होने शुरू हो जाते हैं। पूर्व में स्थापित मूल्यों के स्थान पर नई आस्थाओं व मूल्यों की निकटता मूल्य-संक्रमण का बोध कराता है। मानवीय व सामाजिक चेतना के संसर्ग से स्थापित नवीन मूल्यों को स्थाई स्वीकृति मिलने से पूर्व की स्थिति संक्रमण काल कहलाता है।

मानव-बौद्धिकता की वैचारिक अभिव्यंजना के आधार पर ही मूल्यों का उत्थान और पतन होता है। मनुष्य की प्रवृत्तियों के साथ मूल्यों का निर्माण, चयन, ग्रहण, वर्जन, त्याग एवं स्थापना होती है। मानव जीवन में मूल्य सुनिश्चित नहीं है। प्रतिकूल परिस्थितियों में मूल्यों में बदलाव व मूल्य संक्रमण की संभावना हर क्षण बनी रहती है क्योंकि मानव-जीवन में मूल्य सुनिश्चित नहीं होते। धर्म, संस्कृति, विचारधाराएँ, भाषा, आचरण-व्यवहार आदि मूल्य परिवर्तन के अनेक कारण हैं। वहीं मूल्य-संक्रमण मूल्यों की उत्पत्ति और विघटन के समानांतर चलने वाली प्रक्रिया है। इस मूल्य संक्रमण की प्रक्रिया और परिवर्तन की केंद्रीय शक्ति मानव में ही निहित होती है। डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ ने मूल्य-संक्रमण की स्थिति पर विचार करते हुए माना है कि "जीवन की गति के संदर्भ में निरंतर संघर्ष और अंतर्द्वंद्व के कारण मानवीय और सामाजिक मूल्योंं में निरंतर परिवर्तन की एक विशिष्ट अंतर्धारा संक्रमण की ओर विकसित होती है।"[5]

वैसे तो मूल्य संक्रमण के कई कारण हो सकते हैं। एक ओर देखा जाए तो समाज में प्रचलित नैतिक व्यवस्था एवं मनुष्य की वर्जितोन्मुखी अंतर्बोध का द्वंद्व, आदर्श और यथार्थ का निरंतर संघर्ष तथा मनुष्य का नवीन खोज के प्रति आकर्षण एवं मनुष्य की बाह्य जीवन-परिस्थितियाँ मूल्य संक्रमण के आधार सिद्ध

 Copyright @ 2024 Author

होते हैं। वहीं मानव-इतिहास से और भी कई कारण सिद्ध होते हैं जैसे- राजनीतिक शक्तियाँ, सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, आर्थिक शक्तियाँ, धार्मिक परिस्थितियाँ, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं वैचारिक दृष्टियाँ आदि। स्पष्ट है कि जीवन-मूल्यों में देश-काल-परिस्थिति की अपेक्षाओं के अनुरूप परिवर्तन-संक्रमण एक अनिवार्य एवं स्वाभाविक प्रक्रिया है। जहाँ युगीन परिस्थितियाँ मूल्य-तंत्र को निर्मित करती हैं, वहीं इनके बदलने से मूल्य संक्रमित और परिवर्तित होते हैं।

मूल्य-संक्रमण व मूल्य-संकट आज सर्वाधिक ज्वलंत समस्या का रूप ले लिया है, जिससे केवल भारत में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में अतिवाद का खतरा दिख रहा है। आधुनिक युग में वैज्ञानिक प्रगति और नितनूतन आविष्कारों से मनुष्य भौतिक उन्नति के साथ-साथ अपने जीवन को अत्यधिक संपन्न व सुविधाजनक तो बना लिया है, परंतु जिस तरह उपभोक्तावादी संस्कृति का वर्चस्व बढ़ा है उससे मनुष्य की प्राचीन स्थापनाएँ, मान्यताएँ, विश्वास व आस्थाएँ अत्यधिक प्रभावित हुई हैं। आज के दौर में मनुष्य भौतिक सुखों के भुलावे में अपनी सभ्यता-संस्कृति के श्रेष्ठ तत्वों व संपूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने वाले पारस्परिक मूल्यों से विच्छिन्न हो रहा है। व्यक्ति का आत्म-केंद्रित होने से मानव-मानव के बीच दूरियां बढ़ रही हैं और मानव संस्कृति पर संकट गहराता जा रहा है। इस प्रगति व विकास यात्रा में परंपरागत मूल्यों पर प्रश्न-चिन्ह खड़ा कर उन्हें अस्वीकार तक किया जाने लगा है। धार्मिक-दार्शनिक व सांस्कृतिक-सामाजिक आदि मूल्य नष्ट-भ्रष्ट हो रहे हैं। आधुनिकीकरण के दौर में पढ़े-लिखे लोग भी भौतिक सुख को जीवन का बड़ा मूल्य समझकर अनैतिक कार्य करने लगते हैं जिससे अन्य मूल्यों का हनन होता है। इस परिस्थिति में मूल्योंमुखी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की नितांत आवश्यकता है क्योंकि मूल्यपरक जीवन से ही मानवता की रक्षा की जा सकती है।

निःसंदेह मानव जीवन को गतिशील बनाने में मूल्यों की अहम भूमिका है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार, "जो जीवन को अस्तित्व और गति प्रदान करे, वही मूल्य हैं।"[6] यह सत्य है कि गतिशीलता की इस प्रकिया में कुछ परंपरागत-मूल्य रूढ़िबद्ध होकर अनुपयोगी और निरर्थक हो जाते हैं। इसके बाद नये-नये मूल्यों का उद्भव-विकास होता है। संक्रांतिकाल के दौरान मूल्यों के विघटन से सामाजिक विसंगतियों का प्रभाव समाज के समस्त अंगों-कार्यों पर पड़ता है। इन्हीं स्थापित मूल्यों के स्थान पर नवीन प्रेरणाओं अथवा नयी आस्थाओं के जन्म से संक्रमण का बोध होता है। समाज के इस संक्रमण से साहित्य भी अछूता नहीं है और न ही इसके मूल्य भी स्थिर और बंधे-बँधाए रह पाते। साहित्य हमेशा समाज के अनुकूल ढलता है, साथ ही युग के बदलते क्रम में परिवर्तन व नवीनता को अभिगृहीत करता है। अनेक विचारकों व चिंतकों की विचार-दृष्टियाँ, जीवन-दृष्टियाँ साहित्य में सिद्धांत रूप में प्रतिष्ठित होकर मूल्य बन जाती हैं और जनमानस के चिंतन को अपेक्षित नवीन दिशा प्रदान कर जीवन-मूल्य के संक्रमण का आधार बनती है।

जीवन व समाज में परंपरागत मूल्यों के विघटन एवं नये मूल्यों की स्थापना में साहित्यकारों का विशेष योगदान होता है। मूल्य-संक्रमण को दृष्टि में रखकर हम यहाँ दो प्राचीन महाकाव्य 'रामायण' और 'महाभारत' की चर्चा जरूर करेंगे। ये दोनों महाकाव्य भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है पर मूल्य की दृष्टि से ये एक ही युग में दो विरोधी मूल्यों वाली रचना कही जायेगी, जो मानव-मन में द्वंद की स्थिति उत्पन्न करती है। एक ओर 'महाभारत' मनुष्य को आपसी झगड़ा के लिए प्रेरित करता है वहीं दूसरी ओर 'रामायण' में राज न करने का संघर्ष दिखता है। रामायण में राज न करने की कथा चित्रित है वहीं महाभारत में दूसरे पक्ष को पाँच गाँव भी नहीं देने का संघर्ष चलता है। दोनों महाकाव्य विध्वंसक व मंगलकारी के रूप में मानव को अत्यधिक प्रभावित करता

 Copyright @ 2024 Author

है। चूँकि मनुष्य आशावादी होता है इसलिए वह ऐसे संक्रमण में भी मंगलकारी मार्ग को ही पसंद करता है। समाज अथवा युग-परिवर्तन मूल्य में बदलाव का प्रमुख कारण माना जाता है क्योंकि मूल्यों की स्थापना सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृति, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर होता है। समय के साथ कुछ नये मूल्य बनते हैं और कुछ मूल्यों का ह्रास भी होता है। साहित्य हमें मूल्य के प्रति जागरूक करता है। साहित्य एक तरफ नवीन मूल्यों की रचना कर दूषित सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध नवीन व्यवस्था की स्थापना करता है तो दूसरी ओर समाज को निष्क्रिय बनाने वाले मूल्यों का प्रतिकार भी करता है।

यह सत्य है कि मानव जीवन को सम्यक् और सुचारु रूप से परिचालित करने के उद्देश्य से विद्वानों ने जीवन के कुछ मापदण्डों का निर्धारण किया और उन्हीं के आधार पर मूल्य की अवधारणा अस्तित्व में आई। इस दृष्टिकोण से मूल्य का अर्थ मानव जीवन के संदर्भ में ही महत्त्व रखता है। जीवन के अभाव में मूल्य चिन्तन तो दूर की बात है, मूल्य शब्द का अस्तित्व भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। स्पष्टतः मूल्य शब्द का आशय मूलतः जीवन-मूल्य अर्थात् जीवन के मापदण्ड से ही है। जीवन की बात आते ही 'जीवन कैसा है' और 'कैसा होना चाहिए' दो पक्ष हमारे सामने आते हैं। कैसा है का सम्बन्ध वर्तमान (यथार्थ) से है और कैसा होना चाहिए का सम्बन्ध भविष्य (आदर्श) से है। जब हम इस पर विचार करते हैं कि 'जीवन कैसा है' तब हमारा सम्बन्ध तथ्य से होता है और जब हम इस पर विचार करते हैं कि जीवन कैसा होना चाहिए तो हमारा सम्बन्ध मूल्य से होता है। डॉ. नगेन्द्र के अनुसार- "मूल्य पदार्थ की सार्थकता एवं आंतरिक महत्त्व का ही वाचक है, उसके स्वरूप या प्रकृति का नहीं।"[7]

कहना उचित होगा कि किसी भी विचार या दृष्टिकोण को मूल्य के रूप में स्वीकार करने हेतु उसमें दो मूल बातों का होना आवश्यक है। एक तो यह कि वह दृष्टिकोण या वैचारिक सत्य मनुष्य के चिन्तन का परिणाम हो और दूसरे वह 'सत्य', 'सुन्दर' और 'शिव' से युक्त हो क्योंकि मूल्य जीवन की एक अन्तर्दृष्टि है, एक दृष्टिकोण है, एक अवधारणा है। चिन्तन की दृष्टि से जहाँ जीवन मूल्य नितान्त वैयक्तिक सत्य है, वहीं लक्ष्य की दृष्टि से उसे समाज स्वीकृत सुन्दर तथा शिव का अनुगामी होना चाहिए। भारतीय संस्कृति का चरम लक्ष्य सत्यं, शिवं, सुन्दरं युक्त मानवीय चिन्तन का निचोड़ ही जीवन मूल्य कहलाता है। मूल्यों के सम्बन्ध में जब हम अपनी परम्परा और संस्कृति की ओर दृष्टिपात करते हैं तो हम पाते हैं हमारी सभ्यता और संस्कृति आध्यात्मिक रही है और आध्यात्मिक दृष्टिकोण को केन्द्र में रखकर ही हमारे ऋषि-मुनियों एवं चिन्तकों ने जीवन के कुछ मापदण्ड निर्धारित किए हैं। हमें समकालीन युगबोध, मूल्य संक्रमण और परिस्थितियों के घात-प्रतिघात पर चिंतन और विश्लेषण करने की जरूरत है। यह जानने की जरूरत है कि परम्परागत भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों ने हमें नए दृष्टिकोण प्रदान किये हैं। हमारे परम्परागत पुरुषार्थ चतुष्टय की अवधारणा में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जीवन मूल्य के ही पर्याय हैं।

जीवन की श्रेष्ठता का अर्थ मनुष्य ही खोजता है क्योंकि वह विवेकशील प्राणी है और उसके भीतर अलग-अलग धारणाएं और विचार बनते हैं। उसका जीवन प्रकृति के साथ मुठभेड़ करते हुए नहीं बीतना चाहिए अपितु प्रकृति के सहचर के रूप में दिखाई देना चाहिए। विवेक उसे सभ्यताएँ विकसित करने का विचार देता है और प्रकृति के रहस्यों को सुलझाने की शक्ति देता है। आधुनिक दौर के भारतवर्ष में नगरीकरण का जोरदार प्रभाव रहा है। इस नगरीकरण से उद्योग तथा वृहद स्तर पर वैज्ञानिकीकरण का प्रसार हुआ है, जिसने हमारे जीवन के

 Copyright @ 2024 Author

ढंग को बदल दिया है। इससे सांस्कृतिक तथा जीवन की पुरानी धारणाएँ विनष्ट भी हो रही हैं और नई मान्यताएँ समाज में प्रसार पा रही हैं।

आज हम संस्कृति और मूल्यों के एक विशाल युद्ध में खड़े हैं, जो जीवन के प्रत्येक स्तर पर, प्रत्येक चरण पर, प्रत्येक पहलू में सहस्रों रूपों में दिन-रात चल रहा है। आज पाश्चात्य एकरूपीकरण इसी सांस्कृतिक युद्ध का एक लक्षण है। इस सांस्कृतिक युद्ध में पुराने मूल्य, पुराने स्वप्न, पुरानी राजनीति बार-बार पराजित हो रहे हैं, टूट रहे हैं, बिखर रहे हैं। वर्तमान में भूमण्डलीकरण के कारण मनुष्य का दायरा सीमित नहीं रहा। उसका संबंध देश और समय की सीमाओं को लाँघकर बहुआयामी हो गया है। आज मनुष्य भौतिक समृद्धि की ओर तेजी से बढ़ तो रहे हैं, पर वे उच्चतर मूल्यों से पृथक भी हो रहे हैं।

निष्कर्ष :

स्पष्ट है कि मूल्य-संक्रमण एक सार्वभौमिक और निरंतर होने वाली अनिवार्य प्रक्रिया है। मनुष्य व समाज निरंतर परिवर्तन के दौर से गुजरता रहता है। परिस्थितियों में बदलाव के साथ स्थापित मूल्यों में विचलन से मूल्य-संक्रमण की स्थिति बन जाती है। यह भी सर्वमान्य है कि नवीनता के नाम पर सभी परंपरागत मूल्य त्यागने योग्य नहीं है और न ही उनका अंधानुकरण सही है। वैसे तो सभी मूल्य मानव सापेक्ष होते हैं इसी कारण उसकी सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवेश से मूल्य प्रभावित भी होते हैं। जहाँ विभिन्न देशों में मूल्यों की एकरूपता असंभव है, वहीं एक ही देश में मूल्यों में भिन्नता दिखाई देती है। अतः आज हमें मूल्यों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। हमारे लिए पुरातन में से शुभ-उपयोगी मूल्यों का चयन, अनुपयोगी मूल्यों का त्याग और वैज्ञानिक दृष्टि से स्थापित समाजोपयोगी नवीन मूल्यों को स्वीकार करना ही श्रेयस्कर होगा।

संदर्भ :

1. सेठी, डॉ० हरीश. जीवन मूल्य विमर्श. नई दिल्ली : संजय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ- 133.
2. डॉ० नगेंद्र. नयी समीक्षा : नए संदर्भ. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ- 79.
3. सेठी, डॉ० हरीश. जीवन मूल्य विमर्श. नई दिल्ली : संजय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ- 133-134.
4. चौहान, डॉ० रामगोपाल सिंह. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास, पृष्ठ- 135.
5. सेठी, डॉ० हरीश. जीवन मूल्य विमर्श. नई दिल्ली : संजय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ- 137.
6. सेठी, डॉ० हरीश. जीवन मूल्य विमर्श. नई दिल्ली : संजय प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2008, पृष्ठ- 09.
7. डॉ. नगेन्द्र. नई समीक्षा : नए संदर्भ. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 108.

 Copyright @ 2024 Author